लिखमी चंद माड़साब, एक ग्रामीण स्कूल के साधारण अध्यापक थे। उस वक्त न बाल केंद्रित शिक्षा का नारा था, न शिक्षा में इतने नवाचारों का शोर-शराबा! फिर आखिर ऐसा क्या था कि गांव का यह साधारण अध्यापक लेखक के मन में इस तरह अटका रह गया? एक संस्मरण...

साइकिल सजीव है या निर्जीव?

प्रमोद

पिछले 15 वर्षों से शिक्षक प्रशिक्षण, सामग्री निर्माण एवं शोध कार्य से जुड़े रहे हैं। अभी शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र सलाहकार की हैसियत से काम कर रहे हैं।

मैं एक दिन अपने मित्र की कक्षा पांच में पढ़ने वाली बेटी के साथ गणित में कोण की अवधारणा पर काम कर रहा था। वह केन्द्रीय विद्यालय में पढ़ती है जहां एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित सुन्दर किताबें चलती हैं। त्रासदी यह है कि उन किताबों पर कैसे काम किया जाए इस पर किसी शिक्षक के पास कोई प्रशिक्षण नहीं है इसलिए वे इस नई सोच को ताक पर रख अब भी अपनी उसी पुरानी सोच के साथ काम करते रहते हैं।

उस दिन का काम पूरा होने पर मैं अपने मित्र से गपशप करने लगा। हम इस आशय के साथ गपियाते हुए बाहर आ गए कि मैं अपने घर को निकल लूंगा। यह परिवार ठीक वैसे ही छोटा है जैसा आजकल हमारे किसी महानगर बनते शहर का एक मध्यवर्गीय परिवार हो सकता है। दोनों पति-पत्नी और उनकी बेटी कुल जमा तीन लोग। अब अगर ऐसे छोटे परिवार में आपका आना-जाना थोड़ा भी बेतकल्लुफी भरा हो तो परिवार के सभी सदस्य आपको विदा करने बाहर आ जाते हैं। उस दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ। हम सब लोग गेट के बाहर खड़े उस मिलन के लगभग आखिरी मोड़ पर थे कि मित्र की बेटी ने पूछ लिया, ''अंकल आप इतने अच्छे से समझाते हो, आपको भी आपके टीचर ऐसे ही पढ़ाते थे क्या?'' इस अनायास पूछे गए प्रश्न ने एक तरफ अपने लिए प्रशंसा के कारण मन को सुकून दिया तो दूसरी ओर क्षण भर में अपने शिक्षकों को याद करने के लिए बाध्य किया। ऐसे समय में हमें वे ही शिक्षक याद आते हैं जिन्होंने

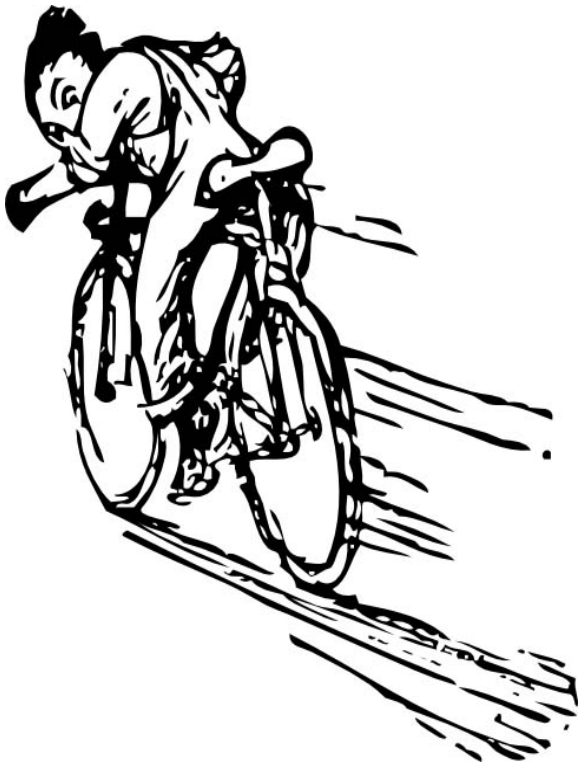

किसी ना किसी तरह का प्रभाव हमारे मन पर छोड़ा हो, वह प्रभाव चाहे अच्छा हो या बुरा। उस दिन मुझे भी अपने एक शिक्षक याद आए जिनका नाम था लक्ष्मीचंद जैन।

हम सब बच्चे उन्हें लिखमी चंद माड़साब कहा करते थे और गांव के लोगों के लिए वे लिखमी मास्टर थे। माड़साब को बीड़ी पीने की आदत थी। मुझे आज भी याद है कि वे टेलीफोन छाप बीड़ी पीया करते थे। माड़साब को पढ़ाने-लिखाने की आधुनिक विधियों के हिसाब से देखे जाने पर तो वे एक पुराने किस्म के मास्टर ही साबित होंगे, इसके बावजूद कुछ बातें हैं जिनकी वजह से वे आज भी याद आ जाते हैं। एक बात तो यह है कि माड़साब के पास जाने में डर बिलकुल नहीं लगता था। उतना पास जाने की हिम्मत फिर किसी शिक्षक के साथ नहीं हुई। उनसे अपने मन की बात कही जा सकती थी। यहां तक कहा जा सकता था कि आज पढ़ाई करने का मन नहीं है। ऐसी एक घटना तो अभी याद भी आ रही है।

यह उन दिनों की बात है जब स्कूल का समय दस से चार बजे का हुआ करता था। एक दिन दोपहर लंच के बाद का समय था, हम बच्चों ने कहा कि आज और पढ़ने का मन नहीं है। माड़साब के पास कोई घड़ी नहीं हुआ करती थी और तीस साल पहले गांव के स्कूल में ऐसे किसी साधन के होने की तो उम्मीद ही कैसे की जा सकती है! वे बाहर गए और सूरज की तरफ देखते हुए बोले अभी छुट्टी का तो टाइम नहीं हुआ है सूरज बहुत ऊपर है। छुट्टी नहीं हो सकने और पढ़ाई में मन नहीं लगने की स्थिति में कुछ विकल्पों पर विचार-विमर्श शुरू हुआ- जैसे अंताक्षरी खेल ली जाए, कविता-कहानी सुनने-सुनाने का काम कर लिया जाए, आदि। उस दिन हम बच्चों का इनमें से कुछ भी करने का मन नहीं था। अंत में माड़साब ने सुझाया अगर हम चाहें तो वे खुद जो किताब आजकल पढ़ रहे हैं उसकी कहानी हम सबको भी पढ़कर सुना सकते हैं। यहां यह बताना जरूरी होगा कि माड़साब को उपन्यास पढ़ने का खूब शौक था। उस पढ़ने में यह बाध्यता कतई नहीं थी कि वह कोई साहित्यिक कृति ही होगी। वह कोई सुरेन्द्र मोहन पाठक जैसे लेखक का उपन्यास भी हो सकता था। अक्सर उनके हाथ में कोई ना कोई मोटी-सी किताब होती ही थी जिसे वे लंच जैसे किसी समय में पढ़ते रहते थे। तो हम लोगों के बीच यह तय हुआ कि आज उस किताब की कहानी ही सुनी जाए, जिसे माड़साब पढ़ रहे हैं।

मुझे आज भी ज्यों कि त्यों याद है कि वह प्रद्युम्न कुमार की कहानी थी, जैसा कि मुझे याद आ रहा है प्रद्युम्न कुमार कृष्ण (हां, आप सही सोच रहे हैं वही श्री कृष्ण) के पौते हुआ करते थे। अब पूरी कहानी तो याद नहीं लेकिन इतना जरूर याद है कि स्कूल में तब अगले तीन-चार दिन तक लंच के बाद पाठ्यपुस्तक नहीं पढी-पढ़ाई गई। बस केवल और केवल प्रद्युम्न कुमार की कहानी ही चलती रही। लंच के बाद माड़साब अपनी कुर्सी पर बैठ कहानी सुना रहे होते और सब बच्चे उनके इर्द-गिर्द बैठ कहानी की दुनिया में विचरण कर रहे होते। उस वक्त स्कूल पांचवीं तक था जिसमें दो शिक्षक थे - एक ये माड़साब और दूसरी एक बहिनजी। कक्षा तीन से पांच तक के बच्चे इनके पास होते थे और कक्षा एक, दो को बहिनजी संभालती थीं। इस तरह हर रोज लगभग दो-ढाई घंटे तक सुनते हुए हमने उस किताब के तीन या चार अध्याय तक की कहानी सुनी। कहानी सुनने का इस तरह मजा कम से कम स्कूली जीवन में फिर कभी नहीं महसूस हुआ।

माड़साब को संगीत का विधिवत कोई ज्ञान तो नहीं था लेकिन उनकी आवाज सुरीली थी। कम से कम उस समय हम बच्चों को जरूर यह महसूस होता था जब वे पाठ्यपुस्तक की कविताओं को गाकर हमें सुनाते थे। आगे चलकर कविता के साथ जो थोड़ा-बहुत राग पैदा हुआ उसमें अपने विश्वविद्यालयी मित्रों के साथ कविता को समझने के लिए की गई मशक्कत के अलावा इन माड़साब द्वारा गाकर सुनाई गई कविताओं का भी कुछ ना कुछ हाथ जरूर रहा। उनके मुंह से सुनी कक्षा पांच की पाठ्यपुस्तक की यह कविता- 'हवाएं गा उठी सरगम, मयूरी नाचती छमछम, कि फिर मोती लुटाने आ गए आषाढ़ के बादल...' आज भी उसी तरह से याद आती है। इतने साल बाद भी अगर ये कुछ पंक्तियां याद रह पाईं तो सिर्फ इसीलिए कि इसे माड़साब के मुंह से सुनना बहुत मधुर लगता था। हम भी फिर उसी धुन में अपना पूरा कंठ खोलकर गाने की कोशिश करते थे।

एक खूबी माड़साब की और थी कि वे कभी भी सिर्फ और सिर्फ किताब के पाठ से नहीं बंधे रहते थे। वे पढ़ाए जा रहे बिन्दु से पैदा होने वाली अन्य उत्सुकताओं पर भी उतनी ही गंभीरता से बात करते थे, उठ रही जिज्ञासाओं का जवाब देने की कोशिश करते थे और इस तरह जिज्ञासा पैदा होने को प्रेरित कर रहे होते थे।

एक खूबी माड़साब की और थी कि वे कभी भी सिर्फ और सिर्फ किताब के पाठ से नहीं बंधे रहते थे। वे पढ़ाए जा रहे बिन्दु से पैदा होने वाली अन्य उत्सुकताओं पर भी उतनी ही गंभीरता से बात करते थे, उठ रही जिज्ञासाओं का जवाब देने की कोशिश करते थे और इस तरह जिज्ञासा पैदा होने को प्रेरित कर रहे होते थे। माड़साब से डर नहीं होने की वजह से कुछ और चीजें भी पैदा होती थीं, जैसे अगर आप उनसे सहमत नहीं हैं तो असहमति के बिन्दु पर बहस की जा सकती थी।

शायद यह तीसरी कक्षा की बात है, विज्ञान में सजीव और निर्जीव का पाठ पढ़ाया जा रहा था। माड़साब पाठ को छोड़ बच्चों के साथ आसपास की दुनिया से उदाहरण चुन उन पर सजीव और निर्जीव की कसौटी को लगाकर देख रहे थे कि अमुक चीज सजीव है या निर्जीव। इसी संदर्भ में साइकिल का जिक्र आया कि साइकिल सजीव है या निर्जीव। कक्षा के एक साथी के अनुसार वह सजीव थी क्योंकि वह घंटी से आवाज निकाल सकती थी और चल सकती थी। लेकिन मुझ सहित कुछ अन्य साथियों के हिसाब से वह निर्जीव थी। माड़साब भी उस साथी से सहमत लग रहे थे। लेकिन हमारे इस दृढ़ता के साथ असहमत होने की वजह से वे हमें भी खारिज नहीं कर पा रहे थे। फिर उन्होंने हमसे उस साथी के कारणों का जवाब देते हुए साइकिल को निर्जीव साबित करने के लिए कहा। हम साथियों ने थोड़ी देर सोचा तो अपने जवाब के पक्ष में हमें एक तर्क मिल गया कि साइकिल जो अवाज निकालती है या चलती है वह ऐसा अपने-आप, अपनी मर्जी से नहीं कर सकती। यह दोनों काम वह किसी और की मदद से करती है। इसलिए वह सजीव नहीं है। इसके अलावा यह कि साइकिल सांस लेती नहीं दिखती, वह खाना नहीं खाती। आखिर इस बहस में साइकिल को निर्जीव मान लिया गया।

आज इतने साल बाद यह बात विचार भी ना करने योग्य लग सकती है, लेकिन अगर उस तीसरी कक्षा के छात्र की नजर से देखें जिसे अपनी बात के पक्ष में तर्क गढ़ना है तो यह बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

आज भी नहीं पता कि यह सब चीजें माड़साब सायास करते थे या अनायास ही उनके स्वभाव का हिस्सा थीं। लेकिन इन्हीं कुछ चीजों की वजह से वे स्मृति का एक स्थाई हिस्सा बन पाए, इतना तो जरूर कहा जा सकता है। ◆